Dr. Sudhir kumar singh
Principal
Rohtas Mahila College
Sasaram

Subject- Sociology
U. G. Notes
Paper 1st
B. A. (Hons) part 1

Topic- Samajshaastra ki paribhaasha aur prakriti

समाज शब्द संस्कृत के दो शब्दों सम् एवं अज से बना है। सम् का अर्थ है इक्ट्ठा व एक साथ अज का अर्थ है साथ रहना। इसका अभिप्राय है कि समाज शब्द का अर्थ हुआ एक साथ रहने वाला समूह। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। मनुष्य ने अपने लम्बे इतिहास में एक संगठन का निर्माण किया है। वह ज्यों-ज्यों मस्तिष्क जैसी अमूल्य शक्ति का प्रयोग करता गया, उसकी जीवन पद्धति बदलती गयी और जीवन पद्धतियों के बदलने से आवश्यकताओं में परिवर्तन हुआ और इन आवश्यकताओं ने मनुष्य को एक सूत्र में बाधना प्रारभ्म किया और इस बंधन से संगठन बने और यही संगठन समाज कहलाये और मनुष्य इन्हीं संगठनों का अंग बनता चला गया। बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने मानव को विभिन्न समूहों एवं व्यवसायों को अपनाते हुये विभक्त करते गये और मनुष्य की परस्पर निर्भरता बढ़ी और इसने मजबूत सामाजिक बंधनों को जन्म दिया।

वर्तमान सभ्यता मे मानव का समाज के साथ वही घनिष्ठ सम्बंध हो गया है और शरीर में शरीर के किसी अवयव का होता है। विलियम गर महोदय का कथन है- मानव स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है, इसीलिये उसने बहुत वर्णों के अनुभव से यह सीख लिया है कि उसके व्यक्तित्व तथा सामूहिक कार्यों का सम्यक् विकास सामाजिक जीवन द्वारा ही सम्भव है। रेमण्ट महोदय का कथन है कि- एकांकी जीवन कोरी कल्पना है। शिक्षा और समाज के सम्बंध को समझने के लिये इसके अर्थ को समझना आवश्यक है।
समाज को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास 'समाजशास्त्र'
द्वारा किया जाता है जोकि एक नया सामाजिक विज्ञान है। एक अलग विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का अध्ययन सबसे पहले फ्रांसिसी विचारक आगस्ट कोंत द्वारा अपनी प्रमुख कृति "पॉजिटिव फिलॉसफी" में 1838 ई. में किया गया। इसीलिए ऑगस्त कोंत को 'समाजशास्त्र का जनक' कहा जाता है। कोंत तथा उस समय के अन्य विद्वान मानते थे कि समाज में जितनी बुराईयां है उनका कारण समाज के बारे में सही-सही ज्ञान का न होना है। इन विद्वानों का यह मानना था कि एक अच्छे समाज का विकास तभी हो सकता है जब समाज के बारे में वैज्ञानिक विधि से ज्ञान प्राप्त किया जाए जैसा कि उस समय प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा किया जा रहा था। ऑगस्त कोंत ने आरम्भ में इस विज्ञान का नाम "सोशल फिजिक्स" रखा किन्तु बाद मे उन्होंने इस विज्ञान को "सोशियोलॉजी" नाम दिया। शाब्दिक रूप से समाजशास्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला शब्द 'सोशियल' लैटिन भाषा से तथा दूसरा शब्द "लोगस" ग्रीक भाषा से लिया गया है। 'सोशियस' का अर्थ है समाज तथा 'लोगस' का शास्त्र। अत: समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ है- समाज का शास्त्र अथवा समाज का विज्ञान। कोंत पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा, "समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।" अलग-अलग विद्वानों द्वारा समाजशास्त्र को अलग-अलग प्रकार से परिभाषित किया गया है।

गिडिंग्स, वार्ड, ओडम तथा समनर आदि विद्वान यह मानते हैं कि समाजशास्त्र सम्पूर्ण समाज को एक इकाई मानकर समग्र रूप से इसका अध्ययन करता है।
गिडिंग्स के अनुसार, "समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।" वार्ड के अनुसार "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।" मैकाइवर तथा पेज, क्यूबर, वॉन विज आदि विद्वान समाजशास्त्र को सामाजिक सम्बन्धों का व्यवस्थित अध्ययन करने वाला विज्ञान मानते है। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार, "समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के विषय में है। सम्बन्धों के इसी जाल को हम समाज कहते हैं।" वॉन विज के अनुसार, "सामाजिक सम्बन्ध ही

समाजशास्त्र की विषय वस्तु का एकमात्र आधार है।"

गिन्सबर्ग, सिमेल, हॉब्हाउस तथा ग्रीन आदि समाजशास्त्रियों ने सामाजिक सम्बन्धों की अपेक्षा सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को अधिक महत्वपूर्ण माना है। इनके अनुसार सामाजिक सम्बन्धों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उनका व्यवस्थित अध्ययन करना कठिन होता है। अत: यदि हमें समाजशास्त्र की प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझना है तो हमें समाजशास्त्र को "सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान" के रूप में परिभाषित करना होगा।

हेनरी जॉन्सन के अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन है। जान्सन का मानना है कि समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक समूहों के संगठन, ढ़ाँचे तथा इन्हें बनाने वाले और इनमें परिवर्तन लाने वाले प्रक्रियाओं तथा समूहों के पारस्पिरिक सम्बन्धों का अध्ययन है। जर्मन विचारक मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों को केवल सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के आधार पर ही समझना पर्याप्त नहीं हैं। चूंकि समाजशास्त्र अन्तर्क्रियाओं का निर्माण सामाजिक क्रियाओं से होता है अत: इनको कर्ता के दृष्टिकोण से ही समझना चाहिए। मैक्स वेबर के अनुसार "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रियाओं का व्याखात्मक बोध कराने का प्रयत्न करता है।"

विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र समग्र रूप से सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। विभिनन सामाजिक सम्बन्धों को सामाजिक क्रिया, सामाजिक अन्त:क्रिया एवं सामाजिक मूल्यों के आधार पर समझा जा सकता है।

समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास

अब आप जान चुके है कि एक विज्ञान के रूप में तथा एक पृथक विषय के रूप में समाजशास्त्र का उद्भव बहुत पुराना नहीं है। समाजशास्त्र को अस्तित्व में लाने का श्रेय फ्रांस के विद्वान आगस्त कोंत को जाता है। जिन्होंने 1838 में इस नए विज्ञान को समाजशास्त्र नाम दिया। मैकाइवर कहते है कि "विज्ञान परिवार में पृथक नाम तथा स्थान सहित क्रमबद्ध ज्ञान की प्राय: सुनिश्चित शाखा के रूप में समाजशास्त्र को शताब्दियों पुराना नहीं, बल्कि शताब्दियों पुराना माना जाना चाहिए। किन्तु जैसा कि आप जानते है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रहने के कारण उसका व्यवहार हमेशा से सामाजिक नियमों द्वारा प्रभावित होता आया है। जिस समाज में मनुष्य रहता है उसके प्रति जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हमेशा से ही उसे रही है, इसीलिए सदियों से विभिन्न धर्मशास्त्री, दार्शनिक तथा विचार को ने सामाजिक जीवन के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए है। समाजशास्त्र के उद्भव की नींव इस प्रकार से देखा जाए तो हजारों वषोर्ं पहले ही रख दी गई है। अब आप जानेंगे कि प्राचीन लेखों से वर्तमान समय तक विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार से समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास हुआ है।

समाजशास्त्र के विकास की प्रथम अवस्था

यद्यपि समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सन् 1837 से पहले सामाजिक सम्बन्धों तथा मानव व्यवहार को समझने का प्रयास नहीं किया गया। यद्यपि वह प्रयास वैज्ञानिक कम तथा काल्पनिक अधिक था। प्लेटो (427-347 ई.पू.) की पुस्तक द रिपब्लिक को समाजशास्त्र की अमूल्य कृति माना जाता है जिसमें उन्होंने नगरीय समुदाय के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया है। यह पुस्तक प्लेटो द्वारा दार्शनिक दृष्टिकोण से लिखी गई है। प्लेटो का मानना है कि किसी व्यक्ति का व्यवहार उस समाज की उपज होता है जिसमें वह जन्म लेता है तथा पलता है व्यक्ति उसी प्रकार से व्यवहार करता है जैसा उसे समाज द्वारा सिखाया जाता है समाज द्वारा दिया गया प्रशिक्षण किसी भी व्यक्ति के व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है। प्लेटो कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में सीखने की क्षमता जन्म से ही अलग-अलग होती है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप में अलग-अलग होते हैं इसीलिए हर एक व्यक्ति हर एक कार्य को नहीं कर सकता है। सामाजिक जीवन में कार्यो का विभाजन व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर ही होना चाहिए। इस प्रकार प्लेटो मानते हैं कि समाज में सामाजिक संस्तरण (उतार-चढ़ाव) पाया जाता है। प्लेटो ने

सामाजिक संगठन की जटिलता को गहराई से नहीं समझा है उन्होंने हर चीज को सुनियोजित माना है जबकि सामाजिक जीवन में कुछ भी सुनियोजित नहीं होता है। एक आदर्श समाज वही है जिसमें हर एक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार कार्य करने के लिए दिया जाए। समाज सबका एवं सबके लिए है।

अरस्तु जो प्लेटो के शिष्य थे उनकी कृति "इथिक्स" तथा "पॉलिटिक्स" भी समाजशास्त्र से सम्बन्धित है। इस पुस्तक में कानून, समाज तथा राज्य का व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। अरस्तु मनुष्य के सामाजिक जीवन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य दूसरों के साथ मिलजुल कर नहीं रह सकता वह या तो मनुष्यता के निम्न स्तर पर है या उच्च स्तर पर, अर्थात या तो वह पशु है या भगवान। उसको अपने भरण-पोषण, सुरक्षा, शिक्षा तथा व्यक्तित्व विकास के लिए प्रारम्भ में अपने परिवार पर तथा उसके बाद अपने समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। देखा जाय तो इन युनानी दार्शनिकों ने राज्य से अलग समुदाय की कल्पना नहीं की है। सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत किया है।यह इनका कमजोर पक्ष रहा है। यद्यपि अरस्तु का दृष्टिकोण अधिक वास्तविक रहा है किन्तु उन्होंने भी एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था की ही कल्पना की है। अरस्तु का दर्शन रूढ़िवादी था।

जहाँ एक ओर प्लेटो का मानना था कि व्यक्ति का व्यवहार उसका समाज निर्धारित करता है वहीं अरस्तु इसके विपरीत यह विचार प्रस्तुत करते है कि व्यक्ति का व्यवहार समाज की प्रकृति को निर्धारित करता है। चूंकि व्यक्ति के व्यवहार को नहीं बदला जा सकता अत: समाज को भी बदलना असम्भव है। अरस्तु परिवार को सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई मानते है। तथा राज्य से पहले परिवार का स्थान रखते है। अरस्तु के पश्चात् समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की चर्चा लुक्रेटियस, सिसरो, मारकस आरेलियस, सेन्ट अगस्टाइन आदि ने अपनी-अपनी पुस्तकों में की है। रोम के प्रसिद्ध लेखक सिसरो की पुस्तक "डी ऑफिकस" युरोप वासियों के लिए दर्शनशास्त्र, राजनीति, कानून तथा समाजशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान प्रस्तुत करती है। किन्तु इन्होंने समाज के कानूनी पक्ष पर ज्यादा जोर दिया है, गैर कानूनी पक्ष लगभग उपेक्षित रहा है। इन्होंने राज्य तथा समाज के बीच भी अन्तर स्पष्ट नहीं किया है। इसके पश्चात् वितण्डावादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देने लगा। ये मनुष्य को भगवान की विशेष रचना मानते थे। ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे इनका विश्वास था ये जो भी नियम बनाते है वे ईश्वर की मर्जी से बने है। अत: इन विधानों और नियमों को बदलने की कोशिश नहीं की जाती थी।

समाजशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था

तेरहवीं शताब्दी तक समाज व सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित इसी प्रकार के विचार आते रहे जिनमें एक ओर दर्शन तथा दूसरी ओर कल्पना पर अधिक विश्वास किया जाने लगा। पहले समाज में होने वाली सभी घटनाओं का कारण भगवान तथा अलौकिक शक्तियों को ही माना जाता था किन्तु अब धीरे-धीरे प्रत्येक सामाजिक घटना के कार्य-कारण सम्बन्ध को तार्किक आधार पर समझने का प्रयास किया जाने लगा। समाजशास्त्र के विकास की द्वितीय अवस्था में यह स्वीकार किया जाने लगा कि समाज तथा सामाजिक जीवन स्थिर नहीं है बल्कि अन्य प्रकृतिक वस्तुओं की तरह इसमें भी परिवर्तन होता रहता है। समाज तथा सामाजिक घटनाओं में होने वाले इस परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित सामाजिक नियम होते है। इस तरह से इस अवस्था में सामाजिक विचारकों ने धीरे-धीरे आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों से सामाजिक घटनाओं को समझने का प्रयास प्रारम्भ किया। थामस एक्यूनस तथा दांते की कृतियों में इस प्रकार के अध्ययन दिखाई देते हैं। इन विद्वानों ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना तथा समाज को भी परिवर्तनशील माना। ये विद्वान मानते थे कि परिवर्तन कुछ निश्चित नियमों तथा शक्तियों के अनुसार होता है।

धीरे-धीरे 45वीं शताब्दी से प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि को आधार बनाया जाने लगा। अब भगवान तथा कल्पनाओं पर विश्वास धीरे-धीरे कम होने लगा। अब होने वाली प्रत्येक घटना का आधार भगवान के स्थान पर विज्ञान को माना जाने लगा। इस अवस्था में प्राकृतिक विज्ञान तथा दर्शन का क्षेत्र अलग-अलग हो गया साथ ही समाज की विभिन्न घटनाओं या सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का विशिष्ट तथा अलग से अध्ययन भी प्रारम्भ

होने लगा। व्यक्ति का सामाजिक जीवन जो पहले सरल था वह सभ्यता के विकसित होने के साथ ही जटिल होने लगा। सामाजिक घटनाएँ भी जटिल तथा विस्तृत होने लगी। ऐसे में समाज की विभिन्न घटनाओं एवं पक्षों का अलग-अलग एवं विशिष्ट अध्ययन आरम्भ होने लगा। सामाजिक जीवन के अलग-अलग पक्ष जैसे आर्थिक, धार्मिक, राजनीति का अध्ययन अलग-अलग दिया जाने लगा। इस प्रकार से अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति हुई अनेक विद्व़ान जिनमें मारकस आरेलियस, सेण्ट आगस्टाइन, जॉन लॉक, रूसो हॉब्स, माण्टेस्क्यू आदि का नाम उल्लेखनीय है इन्होंने समाज एवं सामाजिक जीवन के बारे में चर्चा की है। यद्यपि इन विद्वानों ने अपनी कल्पना के आधार पर अपने विचारों को रखा तथा एक 'आदर्श' तक पहुँचने का प्रयास किया है। ये 'आदर्श' तथा 'वास्तविकता' में अन्तर नहीं कर पाए। चूंकि वैज्ञानिक नियमों का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है आदर्श से नहीं अत: इन विचारकों के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में वैज्ञानिकता का अभाव दिखता है। साथ ही इन सामाजिक विचारकों के निश्कर्ष, क्रमबद्ध निरीक्षण पर आधारित नहीं थे। जबकि हम जानते हैं कि विज्ञान का सम्बन्ध वास्तविक निरीक्षण से है न कि काल्पनिक निश्कर्ष से। विभिन्न विद्वानों द्वारा सोलहवीं शताब्दी में राज्य तथा समाज के बीच अन्तर स्पष्ट करना आरम्भ किया गया। मैकियावेली ने अपनी पुस्तक "दी प्रिंस " में राज्य को सफलतापूर्वक चलाने के सिद्धान्तों को बताया है ये सिद्धान्त ऐतिहासिक ऑकड़ों पर आधारित हैं। सर थॉमस मूर की कृति 'यूटोपिया' (4545) एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था तथा दिन-प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओं का वर्णन करती है। विको की पुस्तक 'दि न्यू साइन्स' के अनुसार समाज कुछ निश्चित कानूनों अथवा नियमों के अधीन होता है। इन कानूनों को निरीक्षण द्वारा ही समझा जा सकता है। वाह्य तत्व जैसे जलवायु, व्यक्ति के सामाजिक जीवन केा किस प्रकार प्रभावित करती है इसका वर्णन माण्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिट ऑफ लॉज' में किया है। यद्यपि माण्टोस्क्यू के विचार अन्य दार्शनिकों की अपेक्षा अधिक यर्थाथ थे किन्तु उन्होंने भी अरस्तु के समान यही रूढिवादी निश्कर्ष दिया कि 'जो है', वह अवश्य 'रहना चाहिए'।

शुरूवात के सामाजिक विचारक प्रमुख रूप से मानीवय विचारधारा के नैतिक पक्ष में रूचि रखते थे, इनके समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में वैज्ञानिक पक्ष का अभाव दिखाई देता है। इस प्रकार से सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में ये कमियाँ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक बनी रही। इसके पश्चात फ्रेंच दार्शनिक तथा समाजशास्त्री आगस्त कोंत द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में समाजशास्त्र की व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक नींव रखी गई। ऑगस्त कोंत ने इस बात को रखा कि विभिन्न विज्ञानों का विकास एक निश्चित क्रम में हुआ है और इस क्रम विकास में समाजशास्त्र सबसे आधुनिक तथा सबसे पूर्ण विज्ञान है। एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की चर्चा कोंत ने अपनी प्रमुख कृति "पॉजिटिव फिलॉसफी" में 1838 ई. में की।

समाजशास्त्र के विकास की तीसरी अवस्था

प्राचीन युरोपीय समाज जो राजतन्त्र पर आधारित था वह एक परम्परवादी समाज पर आधारित था वह एक परम्परावादी समाज था। आर्थिक व्यवस्था में कृषि भूमि केन्द्रीय स्थान पर थी। समाज में धर्म का मुख्य स्थान था। नैतिकता-अनैतिकता का निर्णय धर्मगुरू (पादरी) द्वारा किया जाता था। समाज में परिवार तथा नातेदारी सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान था। राजा को धर्म का समर्थन प्राप्त था तथा वह अपने दैवीय अधिकारों का प्रयोग करके शासन करता था। एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ उस समय यूरोप फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रान्तियों के फलस्वरूप परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रान्ति से पहले यूरोप में चौदहवी से उन्नीसवी शताब्दी के बीच हुई वाणिज्यिक क्रान्ति एवं वैज्ञनिक क्रान्तियों का समय जो "पुनर्जागरण काल" कहलाता है, में समाजशास्त्र के उद्भव हेतु एक पृष्ठभूमि बनी।

जिटलिन ने समाजशास्त्र की उत्पत्ति का कारण दो विरोधी विचारधारा के बीच की अन्त:क्रिया को माना है। उनके अनुसार पहली विचारधारा 48वीं सदी की विचारधारा है जिसे प्रगति की विचारधारा कहते हैं। इस विचारधारा को मानने वालों का कहना था कि समाज प्रकृति का एक अंग है अत: प्राकृतिक नियम समाज पर भी लागू होते है। सामाजिक वैज्ञानिकों को उन नियमों को खोजना चाहिए जो समाज को संचालित एवं परिवर्तित करते हैं। दूसरी विचारधारा का

विकास 49वीं सदी के प्रारम्भिक काल में हुआ जिसे व्यवस्था की विचारधारा कहा गया। चूँकि औद्योगिक तथा फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरो में संक्रमण का दौर शुरू हो गया था। पुराने नियम, मूल्य एवं विचारों के स्थान पर नए सामाजिक नियम तथा कानून बनने लगे थे इस प्रकार से समाज पूरी तरह अव्यवस्थित हो चुका था। ऐसे में समाज के बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा व्यवस्था की विचारधारा का विकास किया गया। ऑगस्त कोंत इन दोनों ही विचारधाराओं से प्रभावित थे। कोंत का मानना था कि समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का तो वैज्ञानिक अध्ययन करेगा ही साथ ही उन सभी नियमों तथा शक्तियों का भी अध्ययन करेगा जो समाज में परिवर्तन लाते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था बनाने में भी योगदान देते हैं।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि सर्वप्रथम समाजशास्त्र का अध्ययन फ्रांसीसी विचारक ऑगस्त कोंत द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में अपनी प्रमुख कृति 'पॉजिटिव फिलॉसफी' में किया गया। इसीलिए ऑगस्त कोंत को समाजशास्त्र का जनक भी कहा जाता है। शुरू में ऑगस्त कोंत गणित के छात्र थे, किन्तु बाद में वे सामाजिक समस्याओं के प्रति आकर्षित हुए तथा 1817-18 ई. में फ्रांसीसी विद्वान सेण्ट साइमन के सम्पर्क में आए। सेण्ट साइमन ऐसे विज्ञान को खोजना चाहते थे जिसमें सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन किया जा सके। आगस्त कोंत ने इनके सम्पर्क में आकर इनके विचारों के आधार पर एक नए विज्ञान की नींव रखी। आरम्भ में कोंत ने इस विज्ञान को 'सोशल फिजिक्स' नाम दिया किन्तु बेल्जियम के विद्वान क्वेटलेट ने इस शब्द का प्रयोग 1835 ई. में अपने एक लेख में किया था अत: बाद में कोंत ने इस नए विज्ञान का नाम 'सोशियोलॉजी' रखा। कोंत तत्कालीन सामाजिक घटनाओं की अध्ययन प्रणाली से असंतुष्ट थे। उस समय सामाजिक घटनाओं का अध्ययन दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किया जाता था। कोंत एक ऐसे विज्ञान की रचना करना चाहते थे जो सामाजिक घटनाओं का अध्ययन वास्तव में वैज्ञानिक रूप से करे तथा तत्कालीन दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित न हो। कोंत कहते हैं कि सामाजिक जीवन की दिशाएँ एकता के सूत्र में बँधी होती हैं और यह एकता विकास की ओर उन्मुख होती है। उनके अनुसार सामाजिक विकास की तीन अवस्थाएँ होती है- धार्मिक, भौतिक तथा वैज्ञानिक। मनुष्य इन्हीं तीन अवस्थाओं के द्वारा आगे बढ़ता जाता है। जहाँ तक प्राकृतिक घटना-वस्तु के चिन्तन का प्रश्न है, मानव अब वैज्ञानिक अवस्था को प्राप्त कर चुका है। किन्तु उसका समाज-सम्बन्धी चिन्तन अभी भी भौतिक अवस्था में ही है। य़द्यपि अधिभौतिक अवस्था लगभग पूर्ण हो चुकी है तथा मानवता वैज्ञानिक अवस्था की दहलीज पर है। कोंत का दृष्टिकोण आशावादी दिखाई देता था। जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1843 में समाजशास्त्र को इंग्लैण्ड में स्थापित किया तथा हरबर्ट स्पेंसर द्वारा इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया गया। हरबर्ट स्पेंसर ने डार्विन के प्रसिद्ध सिद्धान्त "सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट" (बलिष्ठ: अतिजीवित:) का प्रयोग समाजशास्त्र में किया। स्पेंसर ने कहा कि जीवों के समान ही सामाजिक घटना-वस्तु भी सरल से जटिल तथा समरूप से विशम रूप की ओर धीरे-धीरे विकसित होती है। उनके अनुसार एक साधारण आदिम मानव का विकास वर्तमान के सभ्य मानव के रूप में हुआ है। अपने जैविक सिद्धान्त में स्पेंसर ने समाज को मानव शरीर के समान माना है स्पेंसर के सिद्धान्त जिनमें उन्होंने सामाजिक घटना वस्तु की जैविक व्याख्या की है 49वीं शताब्दी तक प्रचलित रहे। इसके पश्चात ग्राहम वैलेस, हॉबहाउस, गिडिंग्स, कूले, मीड आदि ने सामाजिक विकास की व्याख्या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से करी। इन सभी विचारकों ने स्पष्ट किया कि सामाजिक विकास किस प्रकार से मानव मन के विकास पर निर्भर है। ऑगस्त कोंत ने समाजशास्त्र को सामाजिक व्यवस्था तथा प्रगति का विज्ञान कहा है। वे समाज को एक व्यवस्था मानते हैं जिसके सभी भाग एक दूसरे पर निर्भर होते हैं तथा एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार से कोंत मानते है कि सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों के बीच अन्त्रसम्बद्धता तथा अन्तनिर्भरता पाई जाने के फलस्वरूप समाज का अध्ययन समग्र रूप में होना चाहिए। जो समाजशास्त्र द्वारा ही किया जा सकता है।

समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं को नियमित करने वाले सामाजिक निमयों को खोजता है। ऑगस्त कोंत के पश्चात इमाइल दुर्खीम (1858-1947) द्वारा समाजशास्त्र के क्षेत्र में अत्यधिक कार्य किया गया। दुर्खीम भी समाजशास्त्र केा अन्य सामाजिक विज्ञानों से अलग अध्ययन करने पर बल देते हैं। वे समाजशास्त्र को सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान मानते है। सामूहिक प्रतिनिधित्व ऐसे सामाजिक प्रतीक होते है जो समाज के अधिकांश लोगों द्वारा नियंत्रित होते हैं जैसे- विचार, भावनाएँ, व्यवहार के ढंग, धारणाएँ इत्यादि।

एक विषय के रूप में सर्वप्रथम समाजशास्त्र का अध्ययन येल विश्वविद्यालय (अमेरिका) में सन् 1836 में शुरू हुआ। इसके पश्चात 1889 में फ्रांस में, 1924 में पोलैंड, 1924 में मिस्र, 1947 में स्वीडन तथा श्रीलंका एवं 1954 में रंगून विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ। ऑस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया तथा पाकिस्तान आदि में समाजशास्त्र को अन्य विषयों के साथ ही मिलाकर अध्ययन किया जाता है। देखा जाय तो समाजशास्त्र के विकास में इस समय विश्व के कई देशों के विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। जहाँ एक ओर जर्मनी में टॉनीज, रैजल, माक्र्स एवं वीरकान्त ने समाजशास्त्र के विकास में अहम् भूमिका निभाई है वहीं दूसरी ओर फ्रांस में रूसो, माण्टेन तथा मॉस का भी योगदान कम नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका के लेस्टर वार्ड, रॉस, मैकाइवर सोरोकिन, पारसन्स आदि विद्वानों द्वारा समाजशास्त्र के विकास में सहयोग किया गया। हरबर्ट स्पेंसर, मिल, जिन्सबर्ग आदि ने इंग्लैण्ड में समाजशास्त्र को विकसित किया।

समाजशास्त्र के विकास की चतुर्थ अवस्था

बीसवीं शताब्दी में समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक स्वरूपों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन आरम्भ होने लगा। समाजशास्त्र को व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना जाने लगा। इस प्रकार से व्यक्ति एवं समाज के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध को जानने के लिए व्यक्ति के सामुदायिक जीवन का अध्ययन किया जाने लगा। व्यक्ति के वृहत्तर समूह से क्या सम्बन्ध है इसे जाने के लिए स्मॉल तथा गैलपिन आदि समाजशास्त्रियों ने गाँव, नगर तथा अन्य प्राथमिक समूहों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। कूले ने इन्हीं समूहों का अध्ययन करके मानव समूहों को प्राथमिक तथा द्वैतीयक समूहों में विभाजित किया। कूले के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्राथमिक समूहों का प्रभाव द्वैतीयक समूहों की अपेक्षा अधिक एवं स्थाई होता है। नगरों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने का श्रेय पार्क तथा बर्गेस को जाता है। इन्होंने नगरों का जनसंख्यात्मक तथा संरचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् विभिन्न समूहों के अन्त:सम्बनधों के मनोवैज्ञानिक स्वरूपों का भी अध्ययन प्रारम्भ होने लगा। फलस्वरूप समाजमिति पद्धति विकसित हुई। जहाँ एक ओर सामाजिक जीवन में अनुकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के महत्व पर जी. टार्ड तथा ई.ए. रॉस द्वारा प्रकाश डाला गया वहीं दूसरी ओर थॉमस तथा नेनिकी ने मनोवृत्ति एवं मूल्यों की बात की है।